ग्रामीण भारत में भू–स्वामित्व एवं भूमि–सुधार

डॉ० नसरीन सबा*

भारत में स्वतन्त्रता के पश्चात् ग्रामीण .षि–व्यवस्था में सुधार करने के लिए भूमि–व्यवस्था में संशोधन करना आवश्यक समझा गया। इस समय इस मान्यता को विशेष महत्व दिया गया कि भूमि पर किसानों के स्थायी अधिकार को मान्यता दिये बिना न तो .षि–उपज में वृद्धि हो सकती है और न ही ग्रामीण विकास कार्यक्रमों से वांछित लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं। इस .ष्टिकोण से स्वतन्त्रता–प्राप्ति के तुरन्त पश्चात् ही व्यापक प्रयत्न आरम्भ कर दिये गये जिनमें से प्रमुख सुधार–कार्यों को निम्नांकित रूप से स्पष्ट किया जा सकता है :–

(1) जमींदारी उन्मूलन (Jamindari Abolition)–स्वतन्त्र भारत में नवीन संविधान लागू होने के तुरन्त बाद सन् 1951 में कानून बनाकर जमींदारी प्रथा का उन्मूलन कर दिया गया। इससे पूर्व भारत में 40 प्रतिशत .षि–भूमि पर जमींदारों, ताल्लुकेदारों तथा जागीरदारों का स्वामित्व था। इनके द्वारा .षकों का मनमाना शोषण किया जा रहा था। जमींदारी उन्मूलन अधिनियम के द्वारा यह व्यवस्था की गई कि जो .षक कई पीढ़ियों से किसी जमीन पर .षि कर रहे हैं, यदि वे एक वर्ष के लगान का दस गुना रुपया सरकार के पास जमा कर दें तो उन्हें अपनी भूमि का स्थायी स्वामित्व प्राप्त हो जायेगा। ऐसे किसानों को 'भूमिधर' कहा गया। यदि कोई किसान जमींदारी उन्मूलन होने के पाँच वर्ष पहले से किसी भूमि पर .षिकर रहा है तो एक वर्ष के लगान का पन्द्रह गुना रुपया जमा करके वह भी भूमिधर बन सकता है। इस प्रकार भूमि सुधार के प्रथम चरण में जमींदारी उन्मूलन के फलस्वरूप सम्पूर्ण मध्यस्थ वर्ग को समाप्त कर दिया गया। आज भारत में जमींदारी उन्मूलन के फलस्वरूप दो करोड़ से भी अधिक .षक अपनी भूमि के स्वामी बन चुके हैं और लगान के भुगतान में उनका सरकार से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। जमींदारी उन्मूलन के पश्चात सरकार के प्रबन्ध में बहुत–सी .षि–योग्य बन्जर भूमि और निजी वन भी आ गये जिनकी सहायता से बहुत–से भूमिहीन .षकों को भी भूमि का वितरण करना सम्भव हो गया।

(2) काश्तकारी में सुधार (Tenancy Reform)–जमींदारी उन्मूलन के अतिरिक्त काश्तकारी सुधार के अन्तर्गत लगान का भी नियमन किया गया। भारत में

*एम०ए०, पी–एच०डी० (समाजशास्त्र), मगध विश्वविद्यालय, बोध गया

स्वतन्त्रता के पूर्व तक काश्तकारों तथा बटाईदारों (Share-croppers) से उपज का आधा या उससे भी अधिक हिस्सा लगान के रूप में ले लिया जाता था। लगान के अतिरिक्त किसानों को अनेक अन्य सेवाएँ भी देनी पड़ती थीं। भारत में लगान नियमन कानून बन जाने के पश्चात् कानूनी रूप से बटाईदारों के लिए लगान की राशि निर्धारित कर दी गई। इसके अतिरिक्त किसानों को भूमि की बेदखली से बचाने के लिए बटाई पर भूमि जोतने की न्यूनतम अवधि भी निर्धारित की गई। अनेक राज्यों में यह व्यवस्था की गई कि किसी भी किसान को भूमि से तब तक बेदखल नहीं किया जा सकता जब तक वह भूमि का उचित उपयोग करता रहे और लगान का भुगतान निश्चित समय के अन्दर करता रहे। इसके पश्चात् भी वास्तविकता यह है कि भू–स्वामी आज भी सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े हुए किसानों को अपनी भूमि जोतने के लिए देते हैं और उनसे मनमाना लगान प्राप्त करते हैं। किसानों को भी अपने कानूनी अधिकारों का ज्ञान न होने के कारण अनेक वास्तविक लाभ प्राप्त नहीं हो पाते। भू–स्वामी आर्थिक रूप से सम्पन्न हैं और किसान महँगी न्याय–व्यवस्था के कारण उनका विरोध नहीं कर पाते हैं।

(3)चकबन्दी व्यवस्था (Consolidation of Land Holding)–भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भूमि के छोटे–छोटे और बिखरे हुए टुकड़ों के स्थान पर किसानों को भूमि का एक संयुक्त चक देने के उद्देश्य से चकबन्दी कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया। स्किटलेण्ड के अनुसार, चकबन्दी वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा भू–स्वामी किसानों को इस बात के लिए मनाया अथवा बाध्य किया जाता है कि वे इधर–उधर बिखरे हुए अपने भूमि के अनेक टुकड़ों को छोड़कर उनके स्थान पर लगभग उसी आकार के एक या दो चक (खेत) प्राप्त कर लें। भूमि–सुधार के इस प्रयत्न के फलस्वरूप भू–स्वामियों को वास्तव में लाभ हुआ जबकि बटाई पर कार्य करने वाले भूमिहीन .षकों के सामने अनेक नयी कठिनाइयाँ उत्पन्न हो गईं। इसका कारण यह था कि चकबन्दी कानून बटाई पर काम करने वाले .षकों को कोई सुरक्षा प्रदान किये बिना ही लागू कर दिया गया जिसके कारण उन्हें बड़े पैमाने पर बेदखली का सामना करना पड़ा। भू–स्वामियों के पास जब खेत छोटे–छोटे टुकड़ों में बिखरे हुए थे तो उन्हें अपने अनेक खेत बटाई पर देने के लिए बाध्य होना पड़ता था परन्तु चकबन्दी के फलस्वरूप उन्हें भूमि का एक बड़ा चक प्राप्त हो जाने के कारण विभिन्न बटाईदारों में बाँट कर कार्य करवाना सम्भव नहीं रहा। इसके फलस्वरूप जहाँ .षि–उपज में वृद्धि हुई वहीं अनेक भूमिहीन .षकों के सामने बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न हो गई।

(4) जोत की अधिकतम सीमा का निर्धारण(Ceiling on Agricultural Holding) उपर्युक्त भूमि–सुधारों के पश्चात् भी यह अनुभव किया गया कि कुछ

भू–स्वामियों के पास इतनी अधिक भूमि है कि वे उसका सही उपयोग नहीं कर पा रहे हैं जबकि बहुत–से किसान ऐसे हैं जिनके पास बहुत छोटी .षि–भूमि होने के कारण उसके द्वारा उनकी अनिवार्य आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं किया जा सकता। इस दशा में सुधार करने के लिए अनेक राज्यों ने अपने पृथक् कानून बनाकर जोत की अधिकतम सीमा निर्धारित की। यद्यपि ऐसे कानून सभी राज्यों में पारित नहीं किये जा सके लेकिन कुछ राज्यों में जिन व्यक्तियों के पास अधिकतम सीमा से ऊपर भूमि थी, उसे सरकारी अनुमान के अनुसार 26 लाख एकड़ आंका गया। जहाँ तक भूमि की अधिकतम सीमा निर्धारित करके अतिरिक्त भूमि प्राप्त करने में असफलता का प्रश्न है, अधिकतम सीमा से ऊपर की अभी तक आधी भूमि का ही अधिग्रहण किया जा सका है। अधिग्रहण की गई भूमि में से केवल 6 लाख एकड़ भूमि ही निर्धन किसानों में वितरित की जा सकी है। .षि–भूमि की अधिकतम सीमा का निर्धारण करने के पीछे सरकार का यह उद्देश्य था कि इसके द्वारा छोटे किसानों में भूमि का समान रूप से बँटवारा किया जाय, भूमिहीन मजदूरों को बसाने के लिए अतिरिक्त भूमि प्राप्त की जाय तथा बड़े भू–भाग के कारण उत्पन्न होने वाले कुप्रबन्ध को समाप्त करके .षि–उत्पादन में वृद्धि की जाय। भूमि की अधिकतम सीमा निर्धारित करने के फलस्वरूप सरकार पहले उद्देश्य में अधिक सफल नहीं हो सकी यद्यपि दूसरे और तीसरे लक्ष्यों की प्राप्ति में काफी सीमा तक सफलता प्राप्त हुई है।

उपर्युक्त प्रयासों के अतिरिक्त भूमि–सुधार कार्यक्रम के अन्तर्गत समय–समय पर सरकार ने अनेक दूसरे प्रयास भी किये हैं। सन् 1971 में केन्द्रीय भूमि–सुधार समिति ने यह सुझाव दिया कि प्रत्येक पाँच सदस्यों वाले परिवार के लिए दस से अट्ठारह एकड़ के बीच ऐसी भूमि की व्यवस्था होनी चाहिए जो सिंचित हो तथा जिसमें एक वर्ष में दो या दो से अधिक फसलें उगाई जा सकें। इस कार्यक्रम का जून, 1975 में आपातकालीन स्थिति लागू होने के पश्चात् 20–सूत्री आर्थिक कार्यक्रम को एक अंग बना दिया गया। बाद में सन् 1976 में हुए दो दिवसीय मुख्यमन्त्री सम्मेलन में इस कार्यक्रम को अधिक तेजी से लागू करने पर जोर दिया गया। नवम्बर 1977 की केन्द्रीय भूमि–सुधार समिति की बैठक में भी तत्कालीन सरकार ने इस कार्यक्रम को प्रभावपूर्ण बनाने में अपनी सहमति व्यक्त की। इसका अधिक भूमि रखने वाले भू–स्वामियों से अतिरिक्त भूमि प्राप्त करने में सफलता मिल पाती। इस स्थिति में छठी पंचवर्षीय योजना (1980–85) के प्रारूप में अधिकतम

सीमा कानून के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करने के लिए अनेक सुझाव दिये गये। यह सुझाव इस प्रकार हैं–

1. अतिरिक्त भूमि पर राज्य द्वारा तुरन्त अधिकार किया जाय,
2. इस प्रकार प्राप्त अतिरिक्त भूमि का भूमिहीन .षकों में शीघ्रता से वितरण किया जाय,
3. भूमि से सम्बन्धित अभिलेखों की नये सिरे से जाँच की जाय जिससे अतिरिक्त भूमि को छिपाने की प्रवृत्ति को रोका जा सके,
4. भूमिहीन .षकों को भमि देने के पश्चात् उन्हें वित्तीय सहायता भी दी जाय जिससे वे भूमि पर .षि कर सकें, तथा
5. भूमि के वितरण में अनुसूचित जाति तथा जनजाति के लोगों को प्राथमिकता दी जाय। यह सुझाव स्वयं में महत्वपूर्ण हैं लेकिन राजनीतिक अस्थिरता तथा ग्रामीण अभिजात वर्ग के बढ़ते हुए दबाव के कारण अभी इन सुझावों के आधार पर सफलतापूर्वक कार्य नहीं किया जा सका है।

भारत में भूमि–सुधारों का समाजशास्त्रीय महत्व
(Sociological Significance of Land Reforms in India)

भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भूमि–सुधार से सम्बन्धित विभिन्न प्रयासों ने भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था तथा वर्ग–संरचना के स्वरूप को बहुत बड़ी सीमा तक प्रभावित किया है। भारत जैसे देश में जहाँ पिछले सैकड़ों वर्षों से .षकों का अमानवीय शोषण होते रहने के कारण उनकी आर्थिक स्थिति अत्यधिक दयनीय बन गई थी, वहाँ यह समझ लेना कि कुछ वर्षों के अन्दर ही समस्त ग्रामीण विषमताएँ समाप्त हो जायेंगी, बिल्कुल निराधार है। यदि व्यावहारिक .ष्टिकोण से देखा जाय तो स्पष्ट होता है कि विभिन्न भूमि–सुधार प्रयत्नों के फलस्वरूप आज .षकों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति में अत्यधिक सुधार हुआ है। उनका जीवन–स्तर ऊँचा उठा है तथा जन्म और मृत्यु–दर पहले की अपेक्षा कम हो गई है। आन्द्रे बिते ने अपने अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट किया है कि भूमि–सुधारों के प्रभाव से भारत में परम्परागत उच्च वर्ग का प्रभाव बहुत कम हो गया है जबकि सामान्य .षकों की स्थिति में पहले की अपेक्षा बहुत सुधार हुआ है। अनेक दूसरे क्षेत्रों में भूमि–सुधार प्रयत्नों के समाजशास्त्रीय महत्व को निम्नांकित क्षेत्रों में स्पष्ट किया जा सकता है :

(1) शोषक वर्ग की समाप्ति (Abolition of Absorbent Class)–भारत में जमींदारी, ताल्लुकेदारी तथा जागीरदारी का उन्मूलन होने के फलस्वरूप .षकों को इन वर्गों के आर्थिक और सामाजिक शोषण से मुक्ति मिल सकी है। ब्रिटिश काल में जमींदारों ने .षकों का जो अमानवीय शोषण किया, किसान उससे मुक्ति पाकर

आज अपनी भूमि के स्वयं स्वामी हैं। वे अपनी भूमि का किसी भी रूप में उपयोग कर सकते हैं।

(2) मध्यम वर्ग की वृद्धि (Growth of Middle Class)–स्वतन्त्रता के पूर्व भारत में सम्पूर्ण ग्रामीण समाज केवल दो उच्च और निम्न वर्गों में विभाजित था। उच्च वर्ग निम्न वर्ग का सभी प्रकार से शोषण करने के लिए स्वतन्त्र था। जमींदारी उन्मूलन के फलस्वरूप अब ग्रामीण समुदाय में एक नवीन मध्यम वर्ग का प्रादुर्भाव हुआ है जिसकी विशेषताएँ एक बड़ी सीमा तक नगरीय मध्यम वर्ग से मिलती–जुलती हैं। यह वर्ग अपनी भूमि का स्वयं स्वामी है लेकिन इसे कोई ऐसे अधिकार प्राप्त नहीं हैं जिनसे यह छोटे किसानों अथवा भूमिहीन श्रमिकों का शोषण कर सके।

(3) .षकों को सुरक्षा (Security for Farmers)–नये भूमि–सुधारों के फलस्वरूप सभी श्रेणियों के किसानों को विभिन्न प्रकार की सुरक्षाएँ प्राप्त हुई हैं। अब किसी भी किसान को सरलता से उसकी भूमि से बेदखल नहीं किया जा सकता। .षकों एवं सरकार के बीच सीधा सम्बन्ध है जिसके कारण लगान के अतिरिक्त उनको अन्य सेवाएं देने के लिए भी बाध्य नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त यदि कोई किसान बटाई पर खेती करता भी है तो बटाई के लिए न्यूनतम अवधि का निर्धारण इस प्रकार कर दिया गया है कि उसके हित कुछ सीमा तक सुरक्षित बने रहें।

(4) बेगार प्रथा का अन्त (Abolition of Forced Labour)–भारत में कुछ समय पहले तक अधिकांश भूमिहीन .षक बेगार प्रथा की समस्या से प्रभावित थे। .षकों को बिना मजदूरी दिये उनसे श्रम करवाना एक सामान्य–सा प्रचलन था। इसके फलस्वरूप बहुत–से लघु एवं भूमिहीन .षक पहले ऋणग्रस्तता और बाद में बन्धक श्रमिक की समस्या के शिकारहो गये। अब कानून के द्वारा न केवल बेगार प्रथा को समाप्त कर दिया गया है बल्कि बन्धक .षि श्रमिकों को भी तेजी से मुक्ति दिलाई जा रही है।

(5) पिछड़े वर्गों की स्थिति में सुधार (Improvement in the Status of Backward Classes)– इस कार्यक्रम के अन्तर्गत यह व्यवस्था की गई है कि भूमि की अधिकतम सीमा से अधिक जोत रखने वाले व्यक्तियों से प्राप्त भूमि का अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लोगों में वितरण करने को प्राथमिकता दी जाय। इसके फलस्वरूप गाँवों की इन पिछड़ी जातियों की स्थिति में न केवल व्यापक सुधार हुआ है बल्कि आर्थिक स्थिति में सुधार होने से अब वे सामाजिक एवं मानसिक रूप से भी स्वयं को सुरक्षित अनुभव करने लगी हैं।

(6) लगान का तर्कपूर्ण नियमन (Rationalized Regulation of Rent)–नवीन भूमि–सुधारों के अन्तर्गत लगान–निर्धारण इस प्रकार किया गया है जो भूमि की उर्वरा–शक्ति के अनुकूल है। इसके अतिरिक्त अतिवृष्टि अथवा सूखे की स्थिति में

लगान में कमी अथवा छूट की भी व्यवस्था की गई है। इसके फलस्वरूप प्रा.तिक विपत्तियाँ .षकों के जीवन को अब अधिक प्रतिकूल रूप से प्रभावित नहीं कर पातीं।।

(7) आर्थिक स्थिति में सुधार (Improvement in Economic conditions)भूमि–सुधार के रूप में चकबन्दी तथा सहकारी .षि से सम्बन्धित जो नवीन प्रयत्न किये गये हैं उनके फलस्वरूप .षि–उत्पादन में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है तथा किसानों की आर्थिक स्थिति में अत्यधिक सुधार हुआ है। इसी का परिणाम है कि आज गाँवों में भी पक्के और हवादार मकान बन रहे हैं तथा खान–पान और स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी ग्रामीणों का जीवन–स्तर ऊँचा उठा है।

उपर्युक्त सुधारों के अतिरिक्त आज एक ऐसी जनतान्त्रिक ग्रामीण व्यवस्था का निर्माण हुआ है जिसमें प्रत्येक ग्रामीण अपने को सुरक्षित अनुभव करता है। वास्तव में व्यक्तिगत सम्पत्ति का जादू रेत को भी सोना बना देता है। भारत में .षकों को जब से भूमि पर पूर्ण अधिकार प्राप्त हुए हैं, वे सघन .षि के द्वारा सम्पूर्ण ग्रामीण अर्थ–व्यवस्था के पुनर्निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान कर रहे हैं। भारत में भूमि–सुधार के महत्व पर प्रकाश डालते हुए संयुक्त राष्ट्र–संघ की रिपोर्ट में कहा गया है कि "भारत में भूमि–सुधार को लेकर स्वतन्त्रता के पश्चात् जितने कानून बनाये गये उतने कानून सम्पूर्ण विश्व में कहीं नहीं बनाये गये। इन कानूनों ने निश्चित रूप से भारत के लाखों–करोड़ों किसानों को लाभ पहुँचाया है।" इस कथन से भारत में भूमि–सुधारों का महत्व सरलतापूर्वक समझा जा सकता है।

भूमि–सुधारों की सफलता का मूल्यांकन
(EVALUATION OF THE IMPACT OF LAND REFORM)

भारत की ग्रामीण अर्थ–व्यवस्था में नये भूमि–सुधारों का निश्चय ही एक प्रमुख योगदान है लेकिन यह समझ लेना कि नवीन भूमि–सुधारों से ग्रामीण अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित सभी समस्याएँ पूर्णतः दूर हो गई हैं, उचित नहीं है। यदि इन भूमि–सुधारों का निष्पक्ष रूप से मूल्यांकन किया जाय तो अधिकांश सुधार प्रयत्न अप्रभावी दिखाई देते हैं।

(1) सर्वप्रथम यह समझा जाता है कि जमींदारी प्रथा के उन्मूलन से जमींदारों द्वारा किया जाने वाला शोषण पूर्णतया समाप्त हो गया है। वास्तविकता यह है कि आज भी पुराने जमींदारों तथा ताल्लुकेदारों के पास भूमि के इतने बड़े हिस्से हैं कि वे उस पर भूमिहीन .षकों द्वारा खेती करा कर उपज का एक बहुत बड़ा भाग स्वयं प्राप्त कर लेते हैं। ऐसी स्थिति में भूमिहीन श्रमिकों को आज भी उन निर्योग्यताओं का शिकार होना पड़ रहा है जो संशोधितरूप से जमींदारी प्रथा के अन्तर्गत देखने

को मिलती थीं। पुराने जमींदार आज भी गाँवों में जीवन का एक सामन्ती ढंग बनाये हुए हैं।

(2) भारत में भूमि–सुधार सम्बन्धी अधिनियम ग्रामीण संरचना में व्याप्त आर्थिक असमानताओं को समाप्त करने में भी असफल रहे हैं। इसका तात्पर्य है कि जोत की अधिकतम सीमा का निर्धारण हो जाने के पश्चात् भी भू–स्वामित्व के केन्द्रीयकरण में कोई कमी नहीं हुई है। गाँवों में आज भी उन बड़े भू–स्वामियों का प्रभुत्व है जिनके पास सैंकड़ों एकड़ भूमि है तथा दूसरी ओर वे निरीह किसान हैं जो एक या दो एकड़ भूमि से ही अपना जीवन–यापन करने के लिए बाध्य हैं। यह सच है कि अनेक भू–स्वामी आज अपनी भूमि बेचने लगे हैं। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि भूमि का पहले की अपेक्षा अधिक समान वितरण हो रहा है। वास्तविकता यह है कि खेती से उत्पन्न वस्तुओं में तेजी से वृद्धि होने के कारण बड़े भू–स्वामी ही और अधिक भूमि खरीदकर अधिक लाभ प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं। भूमि की अधिकतम सीमा कानून से बचने के लिए कानूनी रूप से इसका अनेक व्यक्तियों में विभाजन दिखा दिया जाता है जबकि व्यावहारिक रूप से सम्पूर्ण भूमि का स्वामी एक ही व्यक्ति रहता है। इस स्थिति में बड़े भू–स्वामियों के लाभ में और अधिक वृद्धि हुई है।

(3) नये कानूनों के द्वारा भूमि पर किसानों के स्वामित्व को अधिकाधिक मान्यता देने का प्रयास किया जा रहा है लेकिन दूसरी ओर स्थिति यह है कि गाँवों में बटाई पर खेती करने के प्रचलन में कोई कमी नहीं हुई है। अधिकांश किसानों के पास आज भी भूमि इतनी कम है कि वे उस भूमि से अपना जीवन–निर्वाह नहीं कर सकते। इसके फलस्वरूप उन्हें बड़े भू–स्वामियों के खेतों में काम करना स्वयं भी लाभप्रद प्रतीत होता है। बसु तथा भट्टाचार्य ने बंगाल और तमिलनाडु के उदाहरण देते हुए बताया है कि यहाँ जागीरदारी प्रथा समाप्त होने के बाद भी 25 प्रतिशत से भी अधिक भूमि पर बटाईदारों द्वारा खेती की जा रही है।1 आन्द्रे बिते ने तमिलनाडु के तंजौर जिले में .षकों का अध्ययन करके यह स्पष्ट किया है कि यहाँआज भी अधिकांश .षि बटाई पर की जाती है तथा बटाईदार को भूमि की उपज का 70 से 75 प्रतिशत तक भाग भू–स्वामी को किराये के रूप में देना पड़ता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि ग्रामों में आज भी छोटे किसान तथा भूमिहीन . षकों की स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है।

(4) भारत में भूमि–सुधार प्रयत्नों की असफलता का एक प्रमुख कारण कानूनी अव्यावहारिकता तथा प्रशासकीय अकुशलता है। वास्तव में विभिन्न कानूनों के अन्तर्गत '.षक' (ब्नसजपअंजवत) शब्द की जो परिभाषा दी गई है, वह अत्यधिक दोषपूर्ण है। इस परिभाषा में .षक का तात्पर्य स्वयं खेती करने वाले व्यक्तियों

के अतिरिक्त उन लोगों से भी है जो .षि–भूमि के स्वामी तो हैं लेकिन स्वयं खेती नहीं करते। ऐसा प्रतीत होता है कि यह परिभाषा उन ब्राह्मण और ठाकुर जातियों के लोगों को सन्तुष्ट करने के लिए दी गई जो गाँवों में बड़ी–बड़ी भूमि के स्वामी हैं लेकिन स्वयं खेती नहीं करते । इसका परिणाम यह हुआ कि विभिन्न विकास योजनाओं के अन्तर्गत .षकों को दी जाने वाली सुविधाएँ इन बड़े–बड़े भू–स्वामियों को ही प्राप्त होने लगी जबकि छोटे .षक इन सुविधाओं का कोई लाभ नहीं उठा सके। आज भी एक छोटा किसान बड़े .षक के दबाव और शोषण का प्रतिकार करनेका साहस नहीं जुटा पाता। इसके परिणामस्वरूप भूमि–सुधारों से आशातीत लाभ प्राप्त नहीं हो सका है।

(5) भूमि–सुधारों की सफलता के लिए जिस समन्वित विकास कार्यक्रम की आवश्यकता थी उसे व्यावहारिक रूप नहीं दिया जा सका। इसका तात्पर्य है कि इन सुधार प्रयत्नों के द्वारा .षि–उत्पादन को बढ़ाने पर तो बहुत जोर दिया गया लेकिन .षि–उपज के समुचित वितरण की व्यवस्था पर अधिक बल नहीं दिया गया। इसके फलस्वरूप आर्थिक .ष्टिकोण से कमजोर वर्गों की स्थिति में अधिक सुधार नहीं हो सका है।

उपर्युक्त सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए आज आवश्यकता इस बात की है कि भूमि–सुधार कानूनों को अधिक व्यावहारिक रूप दिया जाय । विगत वर्षों के अनुभवों के आधार पर अब सरकार एक ऐसी व्यापक और समन्वित नीति पर विचार कर रही है जिसके द्वारा भूमिहीन .षकों तथा बड़े भू–स्वामियों के शोषण में फंसे हुए छोटे .षकों को .षि–योग्य भूमि की अधिक सुविधाएँ प्रदान की जा सकें। वास्तव में भूमि–सुधार सम्पूर्ण ग्रामीण अर्थ–व्यवस्था तथा सामाजिक संरचना का आधार है। इसमें प्राप्त सफलता के आधार पर ही ग्रामीण जीवन को एक नवीन रूप देने की आशा की जा सकती है।

संदर्भ सूची :

1. Andre Beteille : Studies in Agrarian Social Structure, P. 78.
2. Bash and Bhattacharya : Land Refo in West Bengal.
3. Andra Beteille. op cit., P. 77.